Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
March 2024 5(3), 607–614

RADHA SHYAM NARRATOR'S VISION OF THEATRE AND PARSI THEATRE ART

राधेश्याम कथावाचक की रंगदृष्टि और पारसी रंगशिल्प

Dr. Alka Mani [1]

[1] Assistant Professor, Hindi Department, Sri Guru Tegh Bahadur Khalsa College, University of Delhi, Delhi, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i3.2024.2592

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: When the Indian acting tradition and acting style are combined, the Parsi acting method emerges in its unique form. It is during this period of change that many famous actors and actresses emerge. India has had a rich tradition of folk theatre for a long time, but its slavery suppressed this tradition to a great extent and limited the scope of folk theatre. The natural craftsmanship that this folk theatre gave to India, combined with the craftsmanship of the English theatre, was born again in a new form in the middle of the nineteenth century. The presentation process and plot of the Parsi theatre are determined by the political, economic, social and cultural conditions of its era. The actors, playwrights of the Parsi theatre were dependent on those directors and the owners of the company; Radheshyam Kathavachak had a clear vision about acting and character. Acting is unique in itself, all that deficiency can be fulfilled by acting but selection of characters according to character is necessary.

Hindi: भारतीय अभिनय परंपरा तथा अभिनय शैली का जब मेल होता है तो पारसी-अभिनय पद्यति अपने एक विशिष्ट रूप में उभरकर आता है। इस परिवर्तन के दौर में ही कई प्रसिद्ध अभिनेता-अभिनेत्रियों का उदय होता है। भारत में लंबे समय से ही लोकरंगमंच की समृद्ध परंपरा रही है किन्तु इसकी गुलामी ने इस परंपरा को बहुत हद तक दबा दिया तथा लोकरंगमंच के क्षेत्र को सीमित कर दिया। इस लोकरंगमंच ने भारत को जो सहज शिल्प प्रदान किए, वह अंग्रेजी रंगमंच के शिल्प के साथ मिलकर, एक नए रूप में पुनः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पैदा हुई। पारसी रंगमंच की प्रस्तुति प्रक्रिया तथा कथानक इत्यादि अपने युग की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से ही निर्धारित होती है। पारसी रंगमंच के अभिनेता, नाटककार, उन निर्देशकों तथा कम्पनी के मालिकों पर निर्भर थे, अभिनय और चरित्र के बारे में राधेश्याम कथावाचक की रंगदृष्टि स्पष्ट थी। अभिनय तो अपने में विशिष्ट होता है, वह सारी कमी अभिनय के द्वारा पूरी की जा सकती है किन्तु चरित्रानुकूल पात्रों का चयन आवश्यक है।

Keywords: Yakshagana, Melodious, Appropriate, Auditorium, Dullness, Progressively, Glorified, Exaggerated, Earning Money, यक्षगान, रागबद्ध, यथोचित, प्रेक्षागृह, फीकापन, उत्तरोत्तर, महिमामंडित, अतिरंजित, धनार्जन

1. प्रस्तावना

पारसी रंगशिल्प ने हिन्दी रंगमंच के विकास में अपना योगदान दिया अथवा उसका मार्ग अवरूद्ध किया, इस पर लगातार बहसें होती हैं। कोई इसे बाह्य प्रभाव से उत्पन्न होने के कारण पूरी तरह से नकार देता है तो कोई इसे सीमित प्रभाव के साथ स्वीकार करता है किन्तु सही मायनों में इसका मूल्यांकन अभी भी बाकी है। पारसी रंगमंच के उदय का प्रारम्भिक कारण इंग्लैण्ड की नाटक कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा ही थी; इसलिए इन कम्पनियों पर अंग्रेजी रंगमंच का बहुत प्रभाव पड़ा। भारतीय लोकरंगमंच की परंपरा कमजोर अवश्य हुई थी किन्तु पूरी तरह से समाप्त नहीं। इसी अंग्रेजी परंपरा और भारतीय रंगमंच का मिला-जुला रूप है पारसी रंगमंच। यद्यपि कई विद्वानों ने इसे अस्वीकार कर इन दोनों को अलग-अलग बताया है। नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं -"The new theatre which emerged in our country under the impact of the western culture was totally different in all these aspects, because it had taken shape in imitation of an alien theatre, fundamentally different in its world-view and aesthetic approach. According to the Indian view of life, the purpose of drama and theatre was to create a feelings of pleasure or bliss (Rasa) by delineating different situations, mental states of feelings of human beings. The purpose of western drama, on the other hand, was to reveal struggles of life in their various form." 1

यह सत्य है कि भारतीय नाटक और रंगमंच का उद्देश्य 'रस' और 'आनंद' की प्राप्ति है और पश्चिमी रंगमंच का उद्देश्य संघर्ष की उत्पत्ति है किन्तु पारसी रंगमंच ने जिस शैली को अपनाया, उसमें पश्चिम का संघर्ष है तो पूर्व का आनंद भी है। इस रंगमंच ने अपना नया स्वरूप स्थापित कर भावों के पूर्ण अभिव्यक्ति को सहज बनाया। इसी "पारसी-हिन्दी नाटक और रंगमंच में भारतीय लोक-नाट्यों, यक्षगान, रासलीला, रामलीला, स्वांग और नौटंकी की नाट्य-परंपराओं से योगदान लिया गया है। पारसी-हिन्दी रंगमंच ने विशेषकर लोक-नाट्यों से गीततत्व एवं रागबद्ध संगीत को ग्रहण किया है, यद्यपि लोक-नाट्यों की नाट्य-पद्धति पारसी नाट्य-पद्धति से सर्वथा भिन्न है।"2 इस भिन्नता के तत्वों ने भी इन दोनों को जोड़ने का ही कार्य किया। जैसे "नौटंकी के स्वांग ने आगे चलकर पारसी रंगमंच के प्रभाव से कामिक का रूप ले लिया। नौटंकी और रामलीला, रासलीला की तड़क-भड़क और अति नाटकीयता के तत्व पर भी पारसी रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट है।"3 प्रारम्भ में इस रंगमंच के लिए पारसी और मुसलमान निर्देशक अभिनेता होते थे। इसका उल्लेख राधेश्याम कथावाचक भी अपने आत्मकथा में करते हुए कहते हैं कि "हिन्दुओं की अपेक्षा - मुसलमान भाई - उन दिनों 'नाटक' के ज्यादा शौकीन थे। कम्पनियों के मालिक और ऐक्टर तथा राइटर भी प्रायः मुसलमान ही थे।"4 किन्तु नारायण प्रसाद बेताब और राधेश्याम कथावाचक के अवतरण ने नाटक में गुजराती, मराठी, हिन्दी भाषी अभिनेताओं निर्देशकों, लेखकों को भी प्रेरित किया। इससे ही आगे चलकर पारसी रंगमंच के स्वरूप और प्रवृति में परिवर्तन हुआ, जिसमें पूरे भारत की छवि दिखाई देती है।

पारसी रंगमंच पर यह आरोप लगता है कि उसके नाटक केवल अशिक्षित या अल्पशिक्षित ही देखते थे किन्तु 'वालीवाला विक्टोरिया कम्पनी' ने धार्मिक नाटक खेलकर उस परंपरा का आगाज किया जिसके तहत सभी कम्पनियों में धार्मिक नाटक खेलने की प्रतिस्पर्धा होने लगी। कथावाचक ने अपने धार्मिक नाटकों में राष्ट्रीयता के मोती पिरोकर इस परंपरा से दोतरफा लाभ उठाया। उन्होंने इन धार्मिक नाटकों से पूरे उत्तर भारत के दर्शक समाज को भावनात्मक स्वर से सराबोर कर दिया, दूसरा इन पौराणिक चरित्रों के उन संदर्भों को प्रस्तुत किया जिनमें बुराई पर अच्छाई की जीत होती है, जिसमें सत्य चरित्र अपने अधिकार के लिए वीरता के साथ लड़ते हैं।

पारसी रंगमंच की प्रस्तुति प्रक्रिया तथा कथानक इत्यादि अपने युग की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से ही निर्धारित होती है। पारसी रंगमंच के अभिनेता, नाटककार, उन निर्देशकों तथा कम्पनी के मालिकों पर निर्भर थे, जिनका भारतीय संस्कृति से कोई लेना देना नहीं था। इन कम्पनी के मालिकों का एकमात्र उद्देश्य धनार्जन था, इसलिए वे वही प्रस्तुति देते जिससे जनता अधिक एकत्रित हो और धनोत्पादन करने में सहायक बने। इसलिए इन्होंने संस्कृति तथा समाज का ध्यान छोड़कर अपने लाभ तक ही इसे सीमित रखा।

1) मंच सज्जा

पारसी रंगमंच बहुत ही समृद्ध रहा। इस रंगमंच की यह बड़ी उपलब्धि थी कि इसने भारत की उस रंगमंच परंपरा को पुनः पुष्पित पल्लवित किया जिसे मध्यकाल में दरकिनार कर केवल राजाओं-महाराजाओं के प्रशस्तियों में ही अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया गया। इस रंगमंच ने पुनः उस जनता को एक सूत्र में बाँधा, जिसे अभिजात्य व सामान्य के खाँचे में बाँट दिया गया था। इस रंगमंच ने जनता के जीवन में फिर से अभिव्यक्ति की शुरूआत की, जिस पर अंग्रेजी दासता तथा अत्याचार ने प्रतिबंध लगा रखा था। यह सत्य है कि अपने प्रारम्भिक दौर में पारसी रंगमंच ने अतिरंजित प्रस्तुतियाँ दी, जिसने जनता की रूचि को बिगाड़ने का कार्य किया, किन्तु पारसी रंगमंच ने उस समय में सामुहिक अभिव्यक्ति की पुनः शुरूआत की तथा उसी पारसी रंगमंच ने आगे चलकर ऐसे नाटककारों को जन्म दिया जिसने पारसी रंगमंच की दुनिया बदल दी। मनोरंजन एवं धनार्जन से चलकर पारसी रंगमंच राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति तक पहुँच गयी।

नाटक की प्रस्तुति में मंच-सज्जा का विशेष महत्व होता है। इससे न केवल वातावरण की सृष्टि की जाती बल्कि नाटक को प्रभावपूर्ण भी बनाया जाता है। मंच-सज्जा का महत्व इस बात से प्रकट होता है कि जिस समय को हमने देखा भी नहीं हो, उसको भी मंच की सज्जा द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। भरतमुनि भी 'नाट्यशास्त्र' में मंच-सज्जा की विस्तृत चर्चा करते हंै। पश्चिम के नाटकों की प्रस्तुति के समय मंच सज्जा का विशेष ध्यान रखा जाता था। वहाँ मंच के कई प्रकारों का भी उल्लेख मिलता है। चैकोर, वर्तुलाकार इत्यादि मंच के प्रमुख प्रकार हैं।

मंच सज्जा का प्रमुख स्थान होते हुए भी प्रारम्भ में मंच-सज्जा का इतना ध्यान नहीं रखा जाता था। पारसी नाटक मेलों, त्योहारों के अवसर पर सामान्य मंच तैयार कर प्रस्तुत किये जाते थे। ये मंच टिन के शेड डालकर बनाये जाते थे। भ्रमणशील प्रकृति, प्रेक्षागृहों के अभाव व व्यावसायिक प्रवृत्ति के कारण भी मंच सज्जा का कोई विशेष महत्व नहीं था। वैसे तो मंच सज्जा इतना महत्वपूर्ण भी नहीं है जितना कि अभिनय। वर्तमान के नुक्कड़ नाटकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अभिनय, मंच सज्जा से ज्यादा महत्वपूर्ण है, किन्तु वातावरण के निर्माण और भावों के पूर्ण अभिव्यक्ति तथा वास्तविकता का बोध कराने के लिए मंच सज्जा का महत्व तो है ही। इसलिए मंच सज्जा को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

प्रारम्भ में पारसी नाटकों के प्रदर्शन के समय केवल सीन-सीनरियों व गिने-चुने पर्दों से ही मंच-सज्जा का काम चला लिया जाता था। प्रारम्भ में कुल तीन पर्दों का ही प्रयोग होता था। पहला महल का, दूसरा बाजार का, तीसरा जंगल का। इन तीनों पर्दों में से सीन के अनुसार पर्दा लगा दिया जाता था। महल के सामने फव्वारा, बाज़ार में लेटर बाक्स का चित्र भी होता था। पहले तो इन पर्दों से काम चल जाता था किन्तु धीरे-धीरे जब पारसी रंगमंच, पारसी-हिन्दी रंगमंच में परिवर्तित होने लगा तो इस पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

राधेश्याम कथावाचक जिस 'न्यू अल्फ्रेड' में नाटककार के रूप में काम करते थे, उसी 'न्यू अल्फ्रेड' कम्पनी में सोराबजी ओग्रा के चले जाने के बाद निर्देशक के रूप में भी कार्य किया। इसी निर्देशन के दौरान उन्हें एक नाटक की प्रस्तुति के प्रत्येक पक्ष को समझने का अवसर भी मिला। सोराबजी से मिले अनुभव को इन्होंने कार्यान्वित किया। इसके पहले भी सन् 1910 ई. में 'न्यू अल्बट' बरेली आई और इसके मालिक बाबू नानकचंद खत्री ने स्वयं राधेश्याम कथावाचक से अपने 'रामायण नाटक' में संशोधन करने का अनुरोध किया तो इन्होंने न केवल नाटक में संशोधन किया अपितु डायरेक्शन में

भी अपना हाथ आजमाया। धार्मिक नाटक होने की वज़ह से नानकचंद खत्री जी इसमें हस्तक्षेप भी नहीं करते थे। इस दौरान कार्य के प्रति जो प्रतिबद्धता कथावाचक ने दिखाई उसका उल्लेख वे स्वयं करते हैं "मेरे स्वभाव में डिक्टेटरशिप के साथ काम करने का तरिका रहा है- और जब-जब भी काम में जुटता हूँ- तो न जाने कहाँ से शक्ति आती रहती है- कि काम को पूरा करके ही छोड़ता हूँ। इसी स्वभाव ने एक महीने ही के अन्दर - उस 'रामायण नाटक' का संशोधन ही नहीं कराया - उसके गाने भी ठीक कराए - और स्टेज पर खड़े होकर डायरेक्शन भी मुझसे कराया।"5

रंगमंच का प्रबंध और सीन-सीनरी से नाटक को एक आधार मिलता है। उससे नाटक के वातावरण को सजीव किया जा सकता हैं। 'मेरा नाटक काल' में कथावाचक ने जिस प्रकार से रंगमंच प्रबंध की चर्चा की है, वह भी तब जब वे नाटक के लिए एक अनजान शख्सियत थे। इसका एक कारण यह हो सकता है कि वे बरेली आने वाली प्रत्येक नाटक कम्पनियों के नाटक को देखकर उनका विश्लेषण रंगमंच प्रबंध, सीन-सीनरी, गीत, नृत्य इत्यादि के आधार पर करते थे। इसी विश्लेषण का लाभ उन्हें तब मिला, जब उन्होंने 'न्यू अल्फ्रेड' में निर्देशक का भी कार्य किया। बरेली में स्थापित एक नाटक कम्पनी के नाटक 'गुलरूजरीना' देखकर वे उसका विश्लेषण करते हुए कहते हैं "उस कम्पनी के ऐक्टरों ने ऐसे छाती तोड़ गाने गाए - जो उसके बाद - सुनने को बहुत ही कम मिले। गानों ही की प्रधानता थी इस कम्पनी में, -सीन-सीनरी-न्यू अल्फ्रेड जैसी कहाँ ? - न रंगमंच का प्रबंध वैसा।"6 एक बार लखनऊ सिटी में 'मेहरजी' कम्पनी आई। संयोग से कथावाचक वहाँ कथा वाचन करने गये थे। उन्होंने भी इस नाटक को देखा। यहाँ भी इन्होंने केवल नाटक देखकर मनोरंजन नहीं किया बल्कि एक पारखी नज़रों से उसका मूल्यांकन भी किया। वे कहते हैं "इसका स्टेज और नाटक मुझे ज्यादा भाया।"7

सीन-सीनरी और स्टेज का ध्यान उनके दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण था। शानदार पेन्टिग्स सीन-सीनरियों के बल पर भी नाटक पास हो जाते थे। 'न्यू अल्फ्रेड' का वासुदेव दीवाकर सीन-सीनरियों के कार्य सम्हालता था। वासुदेव का गुरू डीनशा ईरानी मैडन थियेटर्स में काम करता था। बेताब के नाटक 'गणेश जन्म' को उसने अपने शानदार सीनरी पर ही पास करा लिया। पहले इन सीनरियों की पेन्टिग्स का कार्य विदेशियों द्वारा किया जाता था किन्तु बाद में यहाँ के कई कलाकारों ने इस क्षेत्र में ख्याति अर्जित की। सोमनाथ गुप्त लिखते हैं - "The Maharashtrian Hindu, Anand Rao, was made a partner in the Zoroastrian Theatrical Company on the basis of his painting. Another known painter from Maharashtra was Divakar. The New Alfred Company's painter, Hussain Khan was well known. He was illiterate, but his monthly salary was Rs 1500, according to Manakshah Balsara. His co-worker was Dinshah Irani, but he wasn't considered to be as good."[8] अपने नाटक 'कृष्णावतार' के प्रदर्शन की तैयारी तथा अपनी कार्य पद्धति का उल्लेख करते हुए राधेश्याम कथावाचक कहते हैं "इसे लिखने, इसकी सीनरी और ड्रेसें बनवाने, तर्जे और नाच 'सेट' कराने, ऐक्टरों को पार्ट सिखाने आदि सभी कार्यों में अपने को मैंने डुबाया है। इससे पहले तक मैं केवल लेखक या ऐक्टरों को ड्रामा सिखाने वाला डायरेक्टर था - अब 'डिक्टेटर' था। 1-2 बड़े सीन मैंने खारिज कर दिए। 'ड्रेसें' बनी बनाई मैंने 'फेल' कर दी। अपने ही हाथ से ऐक्टरों को बाँटे हुए पार्ट अपनी ही राय से बदल भी दिए। चैबे रामकृष्ण को अन्त में जब 'नारद' का 'पार्ट' मैंने दिया - तो वह मुझे इतना ठीक जँचा कि उस पार्ट ही को मैंने लम्बा कर दिया। भला नाटक तो हो 'कृष्णजी' का और - उसमें 'लीडिंग पार्ट' हो 'नारद का'? है न अटपटी बात? पर मैंने ऐसा किया और स्वेच्छा से किया।"9 स्थायी प्रेक्षागृहों के अभाव के कारण नाटक कम्पनियाँ टीन के मडवे बनाती थी। ये अस्थायी स्टेज होते थें, जो महीने भर के लिए बनाये जाते थे, फिर हटा दिए जाते थे। कम्पनी जिस-जिस स्थान पर जाती थीं, वहाँ पर ऐसे ही स्टेज बनाए जाते थे। राधेश्याम कथावाचक ने अपने लिखे कई नाटकों का निर्देशन किया था। इस दौरान उन्हें नये-नये अनुभवों को सीखने और गुजरने का मौका मिला। 'कृष्णावतार', 'परिवर्तन' और 'रूक्मिणी मंगल' की सफलता ने उन्हें एक सफल निर्देशक के रूप में स्थापित कर दिया था, अब बारी आयी स्टेज निर्माण की। 'न्यू अल्फ्रेड' की मंच व्यवस्था कैसी थी और वह किस तरह से कार्य करती थी इसका उल्लेख करते हुए कथावाचक ने लिखा है "स्टेज बनवाने के काम में भी मैंने इस बार अपना 'ज्ञान' बढ़ाया था। 'न्यू अल्फ्रेड' के रंगमंच की चैड़ाई (स्टेज और विंग्ज का स्थान मिलाकर) 70 फुट रहती थी और लंबाई रहती थी 60 फुट - ड्रेस रूम की जगह उससे अलग होती थी। हाउस (दर्शकों की जगह) की लम्बाई 115 फुट रहती थी और चैड़ाई 60 फुट। स्टेज के बीच में कुआँ भी रहता था - जिसका रास्ता सुरंग बना कर भी रक्खा जाता था, 'बिजली की रौशनी भीतर रहती थी। 'पृथ्वी' में धँस जाना या पृथ्वी से निकल आना इस 'कुयें' द्वारा होता था। 'देवी-देवताओं का 'प्रकट' होना या 'अन्र्तधान' होना तो इस 'कुँये' द्वारा ही रक्खा जाता था। उसके अतिरिक्त एक मशीन भी ऐसी रहती थी कि जिस पर बिठाकर पार्ट करनेवाले को ऊपर उठाया या नीचे गिराया जाता था।"10 ये सब उन दृश्यों में किया जाता था जिसमें चमत्कार दिखाना ध्येय होता था। उस समय चमत्कार का प्रयोग तो प्रत्येक नाटक में सम्मिलित होता था।

पारसी रंगमंच को व्यवस्थित करने में कथावाचक का योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने मंच सज्जा को भी स्वाभाविकता से जोड़ा। चमत्कार प्रदर्शन के लिए इन तरीकों को प्रयोग में लाया जाता था। जो चमत्कार उस समय की जनता को सर्वप्रिय था उसी चमत्कार पर एक दिन प्रेमचंद ने सवाल खड़ा कर दिए। उन्होंने कथावाचक से पूछा चमत्कार का प्रयोग क्यूँ किए? तो उन्होंने उस समय की जनता की स्थितियों का उल्लेख करते हुए कहा "जनता अभी वैसी नहीं बनी है- जैसे तुम हो- या तुम्हारे खयाल के और थोड़े से दर्शक हैं। यह व्यवसायी कम्पनी का नाटक है, 'फेल' हो जाए तो कम्पनी ही 'फेल' हो जाए। नब्बे फिसदी पैसा हमें उसी जनता से मिलता है- जो चमत्कार पर भी पागल होकर तालियाँ बजाती है।"11 किन्तु प्रेमचंद स्वयं 'कृष्णावतार' पर माधुरी में छपे अपने लेख में इसके सीन-सीनरी की प्रशंसा किए बिना नहीं रहते हैं "सीन-सीनरी तो इतनी अच्छी दिखाई जाती है कि देखनेवालों का कहना है कि अब तक ऐसी नहीं देखी।"12 प्रत्येक कम्पनी के अपने विशेष ड्राप वाले पर्दे होते थे, जिसपर उस कम्पनी का कुछ विशेष चिन्ह होता था। दर्शकों के सामने जो सबसे पहला पर्दा होता था, उसे ड्राप पर्दा कहा जाता था। सोमनाथ गुप्त लिखते हैं- "The chief Parsi companies had their own drop scenes made according to their special interests. The Zoroastrian Theatrical Company's drop scene had a religious orientation. It depicted the court of King Gustasp. The messenger of God, Zarathustra, is shown standing in court with a ball of fire in his hand. Near him the hakim Jamasp, Prince Asfandiyar, Pishotan, the warrior Zarir and others are standing respectfully."13

2) वस्त्र और रूप विन्यास

वस्त्र, नाटक को पास कराने का महत्वपूर्ण पक्ष था। इनकी महत्ता तो बहुत अधिक है। प्रारम्भ के पारसी नाटकों की इसी आधार पर आलोचना होती थी कि वे केवल ये दिखाने के लिए कि, उनकी कम्पनी के पास अंग्रेजी वस्त्र भी है, पौराणिक व ऐतिहासिक नाटकों में ऐसे नृत्य का सीन रख देते थे, जो पूरी तरह से नाटक से असम्बद्ध प्रतीत होता था। कई पौराणिक देव तो मुगलिया जूते पहने ही मंच पर अभिनय करते दिखाई देते थे। उस समय यह भले ही क्षम्य रहा हो किन्तु पारसी-हिन्दी नाटकों में इसका पूरा ध्यान रखा जाने लगा। प्रत्येक कम्पनी के अपनी दरजी रखे जाते थे, जो कथा के आधार पर नये वस्त्रों का निर्माण करते थे, जिसे कम्पनी के निर्देशक से पास करवाना पड़ता था। निर्देशक यदि उन्हें पास नहीं करता था तो नये वस्त्र बनाये जाते थे।

"रूप-विन्यास अर्थात मेकअप। उस समय भले ही इतना सधा हुआ मेकअप भले ना होता हो किन्तु मेकअप तो होता था। मेकअप से चरित्र को उभारने में सहायता मिलती है। किसी चरित्र को कैसा दिखाना है, उसके मेकअप के द्वारा ही तय किया जाता था। मेकअप चरित्र को दर्शाता है। अच्छे चरित्र को अच्छी मेकअप में प्रस्तुत किया जाता है तथा चरित्र को भयानक दिखाने के लिए उसी तरह का मेकअप किया जाता था, इससे चरित्र को अभिनय में आसानी होती थी, किन्तु सर्वोत्कृष्ट मेकअप कला है- बिना किसी नकली सामान के, केवल भावों के जोर से चेहरा बदलना। अंर्तमन में जिन भावों की मूर्तियां गढ़ी जाय, उन्हें बाहरी स्थूल मूर्ति में भी प्रकट कर देना, सबसे सूक्ष्म कला है।"14 किन्तु पारसी रंगमंच में अभिनय में इतनी सहजता नहीं आ पायी थी। महिला बने पुरूष का चेहरा अबरक लगाकर चमकाया जाता था। देवी-देवता बने चरित्रों के सिर पर चमकिले मुकुट बांधे जाते थे। सोमनाथ गुप्त लिखते हैं - "The make-up of today was not available, and although Parsis are usually fair- skinned, they would apply zinc oxide to lighten their complexion. Vermilion was used to redden the cheeks and collyrium for accenting the eyes. The actors as a rule applied their own make-up. Wigs were made of hair, and crafted to represente women, bald men, old men and youngesters with curly locks. Fairies wore velvet pantaloons, and their wings were constructed of lace and silver work. Devils had black complexions snd sprouted horns."15

3) अभिनय

नाटक की प्रस्तुति, उसकी सफलता-असफलता, चरित्रों के अभिनय पर निर्भर करती है। चरित्र यदि बहुत मजबूत हो और पात्र अपने अभिनय में उस मजबूती को ना दर्शा पाए तो पूरा का पूरा नाटक ही असफल हो सकता है। अभिनय की स्वाभाविकता ही उसे जीवंत बनाती है। नाटक के सम्पूर्ण पक्ष को यदि एक तरफ रख दिया जाए तथा अभिनय को दूसरी तरफ तो अभिनय ही इन सबमें ज्यादा भारी होगा। सम्पूर्ण तत्वों की पूर्ति अभिनय के द्वारा की जा सकती है किन्तु सभी तत्व मिल कर अभिनय की कमी को पूरा नहीं कर सकते। अत: अभिनय ही नाटक का प्राणतत्व है। "पकवान की तरह नाटक में भी गद्य, पद्य, गीत, नृत्य, व्यंग्य, उपदेश, रस और अभिनय-सामग्री आदि उपकरणों का यथोचित परिमाण में ही उपयोग होना चाहिए। किसी उपकरण की विशेषता हुई कि तेज नमक के भोजन की तरह स्वाद बिगड़ा, अथवा कमी हुई तो फीकेपन के कारण मजेदारी मारी गई।"16

पारसी अभिनय पद्यति को व्याख्यायित करते हुए सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखते हैं "पारसी कम्पनियों में जो एक्टिंग प्रचलित है, उसका उच्चारण हिन्दी हृदय, हिन्दी जातीयता के बिल्कुल प्रतिकूल है।"17 ऐसा इसलिए कि इस अभिनय में वाचिक अभिनय ही मुख्य है। अश्लील तथा चरित्रों के भौंडें प्रदर्शन पर ही निराला ने ये कटाक्ष किए होगें।

पारसी थियेटर का अभिनय अपनी अलग पहचान रखता है। इसने लोक नाट्यों के अभिनय तत्व को अपने अंदर समेटा है। "पारसी थियेटर का अभिनय इस अर्थ में विशिष्ट है कि यह एक ओर जहाँ शेरो-शायरी, वाद्य-संगीत, शोर-हंगामा और तलवार की झंकारों के साथ दर्शक की श्रव्यता से जुड़ा था, वहीं यह रंगे हुए पर्दे, चमचमाते हुए दृश्य-फलक और अनेक तरह के चमत्कारमूलक रंगकार्यों, हैरतअंगेज व्यवहारों के सामूहिक दृश्यत्व से सम्बद्ध था।"18 इस प्रकार यह एक विशिष्ट रंगतत्व का उदाहरण था। रंगमंच की स्थापना जब अंग्रेजी प्रभाव में हुई थी, तो अभिनय पद्यति का उनसे प्रभावित होना लाज़िमी ही था। इनकी अभिनय-शैली बुनियादी रूप में विक्टोरियन, शेक्सपीरियन अभिनय शैली की नकल से पैदा हुई। नाटक के कथानक पर शेक्सपीयर का प्रभाव होने के कारण, आगा हश्र के नाटकों की अभिनय शैली भी इससे प्रभावित थी, किन्तु आगे चलकर "भारतीय दर्शक की मांग और संतोष के लिए अभिनय की भारतीय परम्परा जो उस काल तक (और आज तक भी) लोक नाट्यों में उपलब्ध था, जैसे यात्रा, भड़ई, नौटंकी, ख्याल, नाच और तमाशा आदि में - उसकी कुछ अभिनय-पद्धतियों, रूढ़ियों और व्यवहारों को पारसी अभिनय शैली में सहज ही मिलाना पड़ा।"19 इस मेल ने उस समय के भारतीय दर्शक की भावनाओं को तुष्ट किया जो एक तरफ अंग्रेजी रंगमंच से आश्चर्यचकित होकर उसकी तरफ आकर्षित होता था, तो दूसरी तरफ भारतीय रंगतत्वों से अपनी अस्मिता को भी बचाना चाहता था।

स्वाभाविकता तो अभिनय का प्राणतत्व है। स्वाभाविकता से ही हम उससे स्वयं को जोड़ सकते हैं। कथानक भले ही पारसी रंगमंच के नाटक-लेखक हो किन्तु वे स्वाभाविक अभिनय को ही प्रभावपूर्ण मानते हैं। पहले-पहल सोराबजी के अभिनय को देखकर वे उस स्वाभाविकता से मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। बुलन्दशहर में 'न्यू अल्फ्रेड' कम्पनी के नाटक देखने के बाद कहते हैं "सब में 'सोराबजी' का 'कामिक' का पार्ट प्रधान था- पोशाक सादी, मुँह पर पेंट तक नहीं, मुँह बनाना और उछल-कूद बिल्कुल नहीं, कहीं-कहीं आवश्यक और स्वाभाविक जुरूर और शब्दोच्चारण ? वह तो कमाल का मुझे लगा। 'कथावाचक' को अपने 'शब्दोच्चारण' पर नाज था - उनका शब्दोच्चारण देखकर वह 'कपूर' की भाँति उड़ गया।"20

चरित्र की स्वाभाविकता और अभिनय की स्वाभाविकता से प्रभावित कथावाचक, सोराबजी के अभिनय को देखकर आश्यर्चचकित हो जाते हैं। "वाक्यों की स्वाभाविता पर जोर, झटकों के साथ-साथ स्पष्ट उच्चारण में 'सोराबजी' मुझे पूर्ण (चमतमिबज) ही जँचते थे। मानों वे अपने दर्शकों के

कानों में इस प्रकार डालते थे- जैसे श्रावण में किसी बाग के भीतर-शीतल मंद पवन हमें झकोरों द्वारा स्वतः ही आनंद देती है। मैंने उनके 'शब्दोच्चारण' को शिष्यवत् माना।"21 इसी स्वाभाविकता को उन्होंने अपने निर्देशन के युग में स्वयं आजमाया। सोराबजी केवल स्वयं ही ऐसे नहीं थे बल्कि अपने डायरेक्शन में होने वाले नाटकों में चरित्रों के शब्दोच्चारण पर ही ध्यान देते थे। "शब्दोच्चारण वे भी 'जी भर कर'-अच्छे से अच्छा'-ऐक्टरों को सिखाते थे। ऐक्ंिटग के लिए तो कहते थे स्वयं 'स्वाभविक' करो। 'शब्दोच्चारण' की 'रिहर्सल'-'स्पेशल क्लास' में बैठकर ही-चलती थी। 'स्टेज' पर खड़े होकर 'ऐक्टिंग की रिहर्सल' चलती थी।"22

इन अभिनेता-अभिनेत्रियों ने पूरे पारसी थियेटर को हर स्तर से प्रभावित, संचालित तथा अनुशासित किया है। "यही पद्धति पारसी थियेटर की चरम सीमा है, जो अपने अन्त तक उत्तरोत्तर विकसित होती गई और अपनी मृत्यु के बाद यही अभिनेता-स्वामी परम्परा फिल्म और पृथ्वी थियेटर्स में चली गई।"23 पृथ्वी थियेटर्स उसी परंपरा का अगला पड़ाव है। अतः पृथ्वी थियेटर को महिमामंडित कर पारसी रंगमंच को नीचा नहीं दिखाया जा सकता। पारसी रंगमंच के अभिनेता के प्रशिक्षण पर बहुत ध्यान दिया जाता था। उनमें गीत गाने की भी प्रतिभा होनी चाहिए थी। इन अभिनेताओं को तलवार, लट्ठ फेरने, युद्ध, कुश्ती, नाच, मारपीट करने का अभ्यास नित्यप्रति करना पड़ता था। ऊँची आवाज में, एक खास अदा, अंग-चालन, हाथ-पैर भांजकर संवाद और तरन्नुम से पार्ट बोलने का प्रशिक्षण सबसे ज्यादा आवश्यक था।

अभिनय और चरित्र के बारे में राधेश्याम कथावाचक का दृष्टिकोण स्पष्ट था। अभिनय तो अपने में विशिष्ट होता है, वह सारी कमी अभिनय के द्वारा पूरी की जा सकती है किन्तु चरित्रानुकूल पात्रों का चयन आवश्यक है। 'वीर अभिमन्यु' नाटक की प्रस्तुति के समय 'न्यू अल्फ्रेड' नाटक कम्पनी के असिस्टेंट डायरेक्टर थे- भोगीलाल, जो स्त्री पार्ट करने में काफी नाम कमा चुके थे किन्तु 'वीर अभिमन्यु' नाटक में सोराबजी ने स्नेहवश उन्हें अभिमन्यु का पार्ट दे दिया। राधेश्याम कथावाचक जिस पर प्रश्न खड़े करते हुए कहते हैं "स्त्री का पार्ट करने वाला ऐक्टर 'वीर अभिमन्यु' के पार्ट में कैसे फिट हो सकता है? ऐसी भूलों के कारण तो बड़े-बड़े नाटक फेल हो जाते हैं- पार्ट की नेचर और ऐक्टर के नेचर मिलाकर पार्ट बाँटना चाहिए। पर नाटक कम्पनियों के मालिकों या डायरेक्टरों में यह 'अंधापन' प्रायः रहता है कि अपने 'प्यारों' को-आगे बढ़ाने के लिए-बड़े से बड़ा पार्ट उन्हें दे देते या दिला देते हैं, चाहे वे उस पार्ट के लिए योग्य हों या न हों।"24 कथावाचक इस परंपरा के विरूद्ध खड़े होकर नाटकों के पात्र एवं चरित्र को एक स्तर पर लाने तथा स्वाभाविकता को स्थापित करने का कार्य किया।

इस बात को समझते हुए राधेश्याम कथावाचक ने भोगीलाल को कृष्ण का चरित्र दिया। कृष्ण के चरित्र की बारिकियों को समझते हुए "भोगीलाल को ड्रामा सिखाने के साथ-साथ-मैं यह भी रोज़ 'हिदायत' कर देता था कि तुम जब-जब स्टेज पर आओ, तुम्हारी 'मंद मुस्कान'-'एक सी-क़ायम ही रहे। फिर चाहे 'गीता-उपदेश' का सीन हो, या 'अर्जुन-प्रतिज्ञा' का, या 'सुभद्रा-उत्तरा' के विलाप का। ऐक्टर भोगीलाल की यहाँ मुझे प्रशंसा करनी पड़ती है- बड़े-बड़े ऐक्टर जिस बात को 'अदा' नहीं कर सकते -भोगीलाल ने उसे किया;-अपनी 'मंद मुस्कान' - 'एक सी'- सभी सीनों में कायम रक्खी।"25 इस तरह वे चरित्र के मूल तत्व को पकड़ते थे तथा उसे यथार्थ से जोड़ने का प्रयास करते थे। इसी मूल तत्व से जुड़ने के कारण भोगीलाल का कृष्ण का चरित्र बहुत प्रसिद्ध हुआ और उनकी तस्वीर घर-घर पहुँच गयी।

प्रारम्भिक पारसी नाटकों में यह ध्यान रहता था कि अधिक से अधिक गीत और चमत्कारों वाले दृश्य हों। चमत्कार उस समय के नाटकों का मूल तत्व था। "नाटकों के चुनने में उनका ध्यान सदैव यही रहता कि अमुक नाटक जनता में लोक-प्रिय हो कर अधिक से अधिक धनोपार्जन करा सकेगा या नहीं और उनके नाटक में अन्य कम्पनियों की अपेक्षा कोई ऐसा चमत्कार है या नहीं जिसके कारण जनता उसकी ओर अधिक आकर्षित हो। इस चमत्कार में भी एक विचित्र मनोवाक्षा रहती। चमत्कार उन्हें नाटक के प्लाट, उसकी भाषा अथवा रस-भावना के सम्बन्ध में अभीष्ट नहीं था।"26 इसका विश्लेषण उस युग के लिए इतना आवश्यक नहीं रहता था, दर्शक गीत और चमत्कार पर विशेष आकर्षित था, उसकी कथा प्रसंग में कितनी सम्बद्धता है इसका विश्लेषण करने की न तो आवश्यकता थी, न ही बाध्यता। "उनका अभिप्राय चमत्कार से दृश्य-दृश्यान्तर, रंगमंच की ऊपरी चटकमटक और वेश-भूषा की नवीनता में ही सन्निहित रहता था। साधारण पर्दो के साथ 'कटे-परदे' या टूटने वाले परदे (विसकपदह ब्नतजंपदे) और 'टेबला' (जंइसमंनग) इसी का परिणाम थे। उन्हें इस बात के देखने की इच्छा नहीं थी कि दृश्य-दृश्यान्तर गति, समय और स्थान-समन्वय के अनुकूल हैं अथवा प्रतिकूल। उन्हें तो केवल अपनी दर्शकमंडली में आश्चर्य उत्पन्न करने और इस प्रकार उन्हें अपना ग्राहक बनाये रखने की धुन सवार थी।"27 इसी प्रभाववश वे अपने इस कृत्य को उचित ठहराते थे।

वैसे तो 'न्यू अल्फ्रेड' उस समय की सबसे प्रभावशाली कम्पनी थी। इसके नाटक लेखक पंडित राधेश्याम कथावाचक ने हिन्दी भाषा तथा राष्ट्रीयता का प्रचार इसी कम्पनी के माध्यम से किया किन्तु चमत्कार के मामले में वे भी स्वयं को रोक नहीं सके। प्रेमचंद के प्रश्न पर कि नाटकों में चमत्कार का सृजन क्यों करते हो? इन्होंने इसका जवाब दिया 'जनता अभी वैसी नहीं बनी है-जैसे तुम हो या तुम्हारे ख्याल के और थोड़े से दर्शक हैं।...नब्बे फिसदी पैसा हमें उसी जनता से मिलता है-जो चमत्कार पर भी पागल होकर तालियाँ बजाती है।' 'वीर अभिमन्यु' के एक दृश्य में "सब का जाना, सीन बदलना। वृद्धक्षत्र का तपस्या करते हुए दिखाई देना; उसकी गोद में जयद्रथ का कटा हुआ शीस पहुँचाना। वृद्धक्षत्र का उठना और उसके शीस के भी टुकड़े टुकड़े हो कर फटना।"28 चमत्कारी दृश्य है, जिससे दर्शक सुधबुध हो जायें।

कुछ तो ऐसे चमत्कारिक दृश्य थे, जिनका प्रयोग प्रत्येक कम्पनियाँ करती थीं। "रंगमंच के खम्भों के टूटने और उनके पीछे से अभिनेताओं के प्रगट होने अथवा आकाश मार्ग से देवी देवताओं के आविर्भाव तथा पुष्प-वर्षा के दृश्य तो बहुत ही साधारण सी वस्तु थे जो समयानुकूल प्रत्येक कम्पनी में दिखाये जाते थे। इनका यह परिणाम होता था कि दर्शकमंडली इन अद्भूत दृश्यों को देख कर चकित और मंत्रमुग्ध हो जाती थी। अभिनय के गुण दोष आदि की परख तो उसे पहले ही नहीं होती थी और जो कुछ थोड़ी सी होती भी तो ये दृश्य उन्हें भुलाने में समर्थ हो जाते।"29 इस तरह नाटक के कमजोर पक्षों को छिपाया जाता था। जनता इन्हें ही देखकर विस्मृत हो जाती थी।

आध्यात्मिकता का उस सामान्यजन के जीवन में विशेष स्थान था इसलिए "नाटकों की कथावस्तु अधिकत्तर पौराणिक या धार्मिक ही रखी जाती क्योंकि कम्पनी मालिक यह अच्छी तरह जानते थे कि अधिकंाश हिन्दू जनता में ऐसे ही नाटकों का चयन हो सकता है"30 और लगा हुआ पैसा लाभ के साथ वापस आ सकता है। भाषा के माध्यम से संवाद को धारदार बनाया जाता था, और "इन नाटकों की भाषा और संवादों में पर्याप्त शक्ति थी। व्यंग्य के अच्छे-अच्छे उदाहरण उनमें से सुगमता से निकाले जा सकते हैं। उनमें एक बात खटकती है। साधारण बातचीत में भी लय-युक्त गद्य का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। बोलते-बोलते फौरन ही कविता आरंभ हो जाती और जब तक पात्र के उतार-चढ़ाव से युक्त उसकी यह वार्ता चवन्नी वालों को सुनाई न दे जाती तब तक नाटक का अभिनय असफल ही समझा जाता।"31 इसलिए इनके अभिनय में अतिरंजना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

भाषा एवं संवाद के आधार पर ही "राधेश्याम जी की चैबेलों में लिखी रामायण ने एक बार उत्तर प्रदेश की साधारण जनता में तुलसीदास की 'रामायण' के समान ही स्थान प्राप्त किया था। वे तो कथावाचक ही हैं, उनकी कथा घर-घर में गाई गई। प्रचार की दृष्टि से तुलसी की रामायण के उपरान्त इनकी रामायण का ही स्थान है। इन्होंने कृष्णचरित को भी 'कृष्णायन' के रूप में उपस्थित किया है।"32

कथावाचक ने अपने नाटकों में नए प्रयोग किए। वे उस समय से लोगों को जोड़ने के लिए चरित्रों को विशेष रूप में प्रस्तुत करते थे। "राधेश्याम जी ने अभिमन्यु के चरित्र को और भी प्रभावशाली एवम् सुन्दर बनाने तथा कौरव पक्ष को और अनीतियुक्त प्रमाणित करने के लिए छल से कौरवों द्वारा अभिमन्यु के अस्त्र-शस्त्र रखवा लेना चित्रित किया है, यद्यपि मूल कथा में ऐसा नहीं है। हास्य और व्यंग्य के लिए अपनी कल्पना से वीर अभिमन्यु में राधेश्याम जी ने राजा बहादुर नामक एक जी-हुजूर खुशामदी पात्र की सृष्टि की है, जिससे खुशामदी सरकारपरस्तों की खूब खिल्ली उड़ती है। उसका बार-बार 'तारीफ तो यही है' कहना दर्शकों को हँसी से लोट-पोट कर देता है।"33 उस समय में सरकारपरस्तों द्वार किया जाता था, जिसका कथावाचक मज़ाक उड़ाना चाहते थे। यह पारसी रंगमंच की विशेषता थी कि "मिलन-वियोग, युद्ध-मृत्यु एवं विजय-पराजय के विविध दृश्यों, अनुक्रम के बीच दर्शकों को बांधकर वह उसमें आश्चर्य और घबड़ाहट पैदा कर देता है। इस प्रकार वह दर्शक का नाटकीय शोषण करता था। अभिनेताओं का भी यही मूल मंतव्य था कि वे एक साथ प्रबल भावनाओं, आवेगों को अभिव्यिक्ति देकर दर्शकों को अभिभूत कर लें। इसके लिए वे शेरो-शायरी, रोमानियत, रूनकते-झुनकते गीत, ऐयारी, छेड़खानी, बोसा, चूमाचाटी, विभिन्न प्रकार की आवाज का प्रयोग करता था।"34

4) नृत्य संगीत

यह विशिष्ट शैली पारसी रंगमंच की है जिसमें "शुद्ध शास्त्रीय, लोक संगीत के साथ 'इंदर सभा' की संगीत परंपरा को भी इन्होंने एक नयी लहर प्रदान की। इतना ही नहीं पारसी, यूनानी, अंग्रेजी, अरबी धुनों को भी इन्होंने अपने आकर्षण में शामिल कर लिया। भारत के विविध अंचलों की तानों और पल्टों को भी इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर आम आदमी के मन को वशीभूत कर लिया।"35 इन विभिन्न तत्वों के सामंजस्य ने उनकी संगीत परंपरा को एक नया रंग दिया है।

पारसी रंगमंच की विशिष्ट गायन शैली थी, जो इनके द्वारा ही विकसित थी। उनके गीतों को कई प्रकारों में बाँटा जा सकता है, जैसे- वंदना, मंगलाचरण या नांदी के गीत, चरित्र-गान और नृत्य, गम्भीर 'वन्स मोर' के गाने, वन्स मोर के कामिक गानें, सोलो डान्स और समूह नृत्य के गानें, उपदेश और संदेश के गानें। "नाटक के बारे में प्रथम भाग में मंगलाचरण, वंदना, सलाम और नांदी के गीत और नृत्य जितने महत्वपूर्ण थे, उतने ही महत्वपूर्ण अन्य सभी नृत्य और गीत हुआ करते थे। बहुत सारे नाटक तो इन्हीं गीतों-नृत्यों के आधार पर महीनों चलते थे और दर्शक उन्हीं गीतों को सुनने तथा नृत्य देखने के लिए बार-बार रंगशाला में आते थे। जब कोई कम्पनी किसी शहर में आती थी और उसके गीत किस तरह से दर्शकों को प्रभावित करते थे, उसका उदाहरण यह है कि वहां लोग महीनों सोते-जागते उन्हीं गानों को गुनगुनाते रहते थे तथा उन गानों से उनका ऐसा मानसिक संबंध जुड़ता था कि वे अपने दैनिक जीवन में भी उन गीत-गानों का व्यवहार करने लगते। ऐसा भी सुना जाता है कि जिन कम्पनियों के प्रदर्शनों में अच्छे गाने अर्थात दर्शकों में हिट होने वाले गाने नहीं होते थे, उनके गाने वाले बदनाम हो जाते थे और बहुत कम दर्शक उनके नाटकों को देखने जाते थे।"36 पारसी रंगमंच की विशेषता उनकी संगीत और नृत्य परंपरा ही थी। कहीं-कहीं ऐसे गीतों का प्रयोग होता था, जो दर्शकों को सिर्फ संगीत का आनंद देने के लिए प्रयोग किया जाता था, जैसे 'वीर अभिमन्यु' में उत्तरा का यमन कल्यान राग में यह गायन-

"मोहिं पिया की डगरिया दिखादो सखी।
बाट तकत मैं तो हार गइ।।"37

'वीर अभिमन्यु' में कई 'वन्स मोर' के गीत भी कथावाचक ने लिखे हैं-

"देखो, प्रेम का पंथ निराला
नैना थके प्रेम-रस पीवत, भरत न प्यास-पियाला।
क्षीर उठत है महावेग से, जब लागत है ज्वाला।
बैठ जात है वाही छिन, जब जल का छींटा डाला।।"38

पारसी नाटकों विशेषता, उसमें नृत्य और गीत की भरमार थी। इन गीतों में शास्त्रीय, लोकसंगीत और मिश्र रागों का इस काल के नाटककारों ने खुलकर किया। गीत-संगीत और नृत्य की इस व्यापकता में उस काल का दर्शक वर्ग पूरी तरह से आकर्षित था और इसी ने पारसी रंगमंच की लोकप्रियता को निर्विवाद रूप से स्थापित किया था। इन नाटककारों ने इस संगीत को नाटक के अभिन्न तत्व के रूप में देखा। "राधेश्याम ने 'महाभारत' और 'वीर

अभिमन्यु' में मुख्यतः खमाच, खेमटा, कहरवा, पीलू और दादरा का प्रयोग किया है। संगीत के अतिरिक्त संवाद के नाम पर इन्होंने 'घनाक्षरी', 'कुण्डलिया', 'पद' आदि का भी इस्तेमाल किया है।"39

5) प्रकाश और ध्वनि प्रभाव

परसी थियेटर के नाटकों में प्रकाश व्यवस्था इतनी विकसित नहीं थी। प्रारम्भ में तो दिन मे उजाले में ही नाटक खेले जाते थे, किन्तु जब रात में खेले जाने लगे तो मसालों को जलाया जाता था। बाद में गैस के हण्डे जलाये जाने लगे। जब बिजली नहीं थी तो स्टेज को मोमबत्तियों से प्रकाशित किया जाता था। सोमनाथ गुप्त लिखते हैं- "The stage was lit by candles, clay lamps, filled with oil, or torches. There were no footlights at that time. Gradually gas lights introduced. Gas or carbide was first used by Kunvarji Nazir in his production of the Indar Sabha, he bathed the stage in different colours according to the dress of the fairies. When electricity was later invented there was a great increase in the appeal of the scenes and various fantastic effects could be shown."[40]

बिजली की शुरूआत होने के बाद, नाटक के प्रस्तुति के समय बिजली का प्रयोग किया जाने लगा था। पात्रों के स्टेज पर आने और जाने के समय लाइट्स को बढ़ाया और घटाया जाता था। "प्रकाश का उपयोग नाटक के उठते-गिरते व्यापार को रेखांकित करने, बल देने, वातावरण की सृष्टि करने और छोटे-छोटे अन्तरिम तथा अन्तिम चरम बिन्दुओं को निर्मित करने और दृष्टिकेन्द्र में स्थिर रखने के लिए महत्वपूर्ण समझा जाने लगा।"41 इसलिए उस युग में प्रकाश-ध्वनि का विकास नहीं होने के कारण उसपर ज्यादा जानकारी भी नहीं मिलती है। ध्वनि व्यवस्था का भरपूर संगीत के माध्यम से ही लिया जाता था।

कुल मिलाकर पारसी रंगमंच अपनी विशिष्ट शैली के लिए ही प्रसिद्ध था। इसने गीत-नृत्य और साज-सज्जा का विशेष ध्यान रखा गया था। सर्वदानंद लिखते हैं "जहाँ तक साज-सज्जा और चमक-दमक का प्रश्न है, आज के नाट्य-प्रदर्शन उन कम्पनियों के खेलों की समता नहीं कर सकते। गाने, नृत्य, चमत्कारों से भरे दृश्य, शायरी के नगीना-जड़े डायलॉग, भड़कीले, रँगे-चुँगे परदे, उजागर वाद्य संगीत, सब मिलाकर दर्शकों पर एक रंगीन मोहनी डाल देते"42 यह उस पारसी रंगमंच की विशेषता थी। पारसी-हिन्दी रंगमंच की विशिष्ट प्रस्तुति का ही यह असर था कि उसने लगभग एक शताब्दी तक जनता के हृदय पर राज किया। इनके नाटक और प्रदर्शन अपने स्वरूप में प्रभावपूर्ण और आनन्ददायक थे। यहाँ 'सौ तरानों का मजा, एक फरियाद में' लिया जा सकता था। इस काल के नाटकों में श्रृंगार और वीररस ही प्रधान रस थे किन्तु यह इनके ही वश की बात थी कि ये प्रेम की मूर्ति में ही अन्य रसों की सृष्टि कर, असाधारण शक्ति पैदा कर देते थे। इस पर ही उस समय का दर्शक तन-मन-धन से न्यौछावर हो जाता था। यह इस रंगमंच की ही ताकत थी कि इसने रंगमंच, नाट्य के सभी उपकरणों और पक्षों को मजबूती के साथ, प्रभावपूर्ण तरिके से प्रस्तुत किया, जिसकी कमी वर्तमान में भी है।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Nemichandra Jain- Indian Theatre, Vikas Publishing House, New Delhi, 1992 page no. 64
Lal, Dr. Laxminarayan - Parsi-Hindi Theatre, Rajpal and Sons, published under the Publishers' Scheme implemented by the Central Hindi Directorate, Ministry of Education and Social Welfare, Government of India, First Edition: 1973, p. 25
Ibid, p. 25
Radheshyam Kathavachak - Mera Natak Kaal National School of Drama, Bahawalpur House, New Delhi, p. 22
Ibid, p. 34-35
Ibid, p. 22
Ibid, p. 29
Somnath Gupt - The Parsi Theatre : Its Origin and Development-, translated by Kathryn Hansen Page No. 177
Mera Natak Kaal, pp. 113-114
ibid p. 130
ibid p. 126
ibid p. 126
Somnath Gupt - The Parsi Theatre : Its Origin and Development-, translated by Kathryn Hansen Page No. 178

Lalit Kumar Singh 'Natwar' - The Art of Makeup, Colour Documents, Mahesh Anand, Page 377
Somnath Gupt - The Parsi Theatre : Its Origin and Development, translated by Kathryn Hansen Page No. 181
Our theatre and acting art - Lalit Kumar Singh 'Natwar' - Rangdastawez, p. 284
Nirala - Rangdastawez, p. 25
Parsi-Hindi theatre, Laxminarayan Lal, p. 89
ibid. p. 90
My period of drama, p. 54
ibid. p. 46
ibid. p. 54
Parsi-Hindi theatre, Laxminarayan Lal, p. 90
My period of drama, p. 54-55
ibid. p. 56-57
Gupta; Dr. Somnath - History of Hindi Drama Literature, Indrachandra Narang, Hindi Bhavan, Allahabad, Fourth Edition: 1958, p. 105
ibid. p. 105
ibid. p. 106
ibid. p. 106
ibid. p. 107
ibid. p. 107
Shastri; Dr. Devarshi Sanadhya - Hindi mythological plays, Chaikhamba Vidya Bhavan, Varanasi, edition: first, Samvat 2017, pp. 227-228
ibid. pp. 229-230
Varshneya; Dr. Raghuvardayal - Role of stage and Hindi drama, Indraprastha Publication K-71 Krishnanagar, Delhi-51, edition: 1999, p. 278
ibid. p. 278
Lal, Dr. Laxminarayan - Parsi-Hindi stage, p. 152
ibid. p. 158
ibid. p. 163
Lal, Dr. Laxminarayan - Parsi-Hindi stage, p. 109
Somnath Gupt - The Parsi Theatre : Its Origin and Development, translated by Kathryn Hansen Page No. 180
Jain, Nemichand - Rangdarshan, Radhakrishna Publications, Daryaganj, New Delhi, Third Edition: 2010 Pg. 65
Sarvadanand - Rangmanch, Shriram Mehra and Company, Agra First Edition: 1966 Pg. 18